International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 7, July- 2023
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

भारतीय सभ्यता में जाति व्यवस्था के जन्म पर एक अध्ययन

Prof Ashok Kumar
Department of history
Government arts college , Sikar

सार
भारतीय समाज के बुनियादी तत्वों और विभिन्न पहलुओं को समझने के बाद हम सामाजिक संस्थाओं के बारे में जिसमें आदिम, ग्रामीण एवं शहरी लोग हैं, अब इसकी एक महत्वपूर्ण संस्था जाति व्यवस्था का उल्लेख करेंगे। इस अध्याय में हम जाति के मुख्य लक्षणों, जाति और वर्ण के अन्तर, जाति और वर्ग तथा जाति व्यवस्था के परिवर्तन का उल्लेख करेंगे। जाति की अवधारणा से जुड़े हुए संस्कृतीकरण, पश्चिमीकरण और प्रजाति का उल्लेख करेंगे। जाति की उत्पत्ति स्पेन की भाषा के कास्टा से हैं। कास्टा यानी प्रजाति या ऐसा समूह, जिसमें वंशानुगत लक्षण होता है। पुर्तगालवासियों ने इस शब्द का प्रयोग जाति के लिए किया। जाति शब्द ने भ्रम पैदा कर दिया है। इसका प्रयोग वर्ण और जाति दोनों के लिए किया गया है। आपको ज्ञात है कि लोग चार जातियों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र का प्रयोग करते हैं लेकिन ये चार जातियाँ - जातियाँ न होकर वर्ण हैं। आज हम इन्हें वर्ण न कहकर जाति कहते हैं। इस अध्याय में हम जाति का मतलब जाति से ही लेते हैं, वर्ण से नहीं ।

मुख्य शब्द: भारतीय ,सभ्यता, व्यवस्था

भूमिका:

भारत में यदि किसी भारतीय से उसकी जाति पूछ ली जाए, तो उसके लिए ये बिलकुल भी आश्चर्य का विषय नहीं होगा, क्यूंकि स्वंत्रता के सात दशक बाद भी इस धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में चाहे मात्र कुछ घंटो का संवाद बनाना हो या जिन्दगी भर के लिए निभाने वाला कोई रिश्ता, सिर्फ जाति का मुद्दा ही है जो दो लोगों को जोड़ता हैं। इसलिए शायद जातिवाद पर बात करना आवश्यक हो गया हैं। इसकी परिभाषा भी कोई सीमित नहीं हैं, जातिवाद शब्द के भीतर जो स्वार्थ छुपकर बैठा हैं, वो ही इसे एक शब्द में ही अच्छे से समझा सकता हैं। वास्तव में जातिवाद जिन दो शब्दों से मिलकर बना है वो ही इसकी दिशा को मोड़ देते हैं, "जाति" का अर्थ हैं वो समुदाय जो आपस में आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों से जुड़ा हुआ हो, और "वाद" का मतलब कोई व्यवस्थित मत या सिद्धांत जिसकी अधिकता कब हो जाती हैं पता नहीं चलता, ऐसे में जाति और वाद से मिलकर बना यह जातिवाद शब्द किसी एक समुदाय विशेष को ही नहीं बल्कि पूरे समाज को गलत तरीके से प्रभावित कर सकता हैं। अब राजनीति में इसका उपयोग बहुत किया जाता हैं इसी कारण शायद भारत जैसे पंथ निरपेक्ष, धर्म-निरपेक्ष लोकतांत्रिक देश में भी जातिवाद को इतना पोषण मिल रहा हैं।

'काका कालेकर" के शब्दों में जातिवाद शक्तिशाली पक्ष द्वारा की जाने वाली वो अंधाधुंध अवहेलना हैं जो कि स्वस्थ समाज के लिए आवश्यक तत्वों जैसे समानता, भाईचारे को खत्म करती हैं। जबकि "के.एम. पणिक्कर" के शब्दों में जातिवाद किसी जाति या उपजाति की वो ईमानदारी हैं जो कि राजनीति में अनुवादित हो चुकी हैं। "

भारतीय समाज में जातिवाद की उत्पति कब हुई, ये बता पाना मुश्किल है, क्यूंकि आदिकाल में मानव छोटे-छोटे समूह बनाकर जीवन यापन करते थे। इसी क्रम में ये समूह कब एक जाति में बदले उस समय का पता लगाना सम्भव नहीं है. लेकिन जातिवादिता की रूढ़ता कैसी जन्मी होगी ये जरुर समझा जा सकता है देश पर जब बाहरी आक्रमण होने शुरू हुए तो अपने अस्तित्व को बचाने के प्रयास में जातिवादीता जटिल होती चली गई, इस तरह से जाति को कुछ नियमों से बाँधा जाने लगा जैसे रोटीबंदी, बेटीबंदी, ये "बंदी" प्रत्यय के साथ नाम इसलिए बने, क्यूंकि इन दोनों ही शब्दों में रोटी मतलब रोजगार और बेटी को मतलब बेटी के विवाह को एक सीमा का निर्धारण कर इसे बाँध दिया गया। रोटी-बंदी का अर्थ हैं कि अपना खाना और अपना रोजगार अपनी जाति के बाहर किसी से भी साझा नहीं करना । जबकि बेटीबंदी में बेटियों का विवाह जाति से बाहर करना निषिद्ध कर दिया गया। भारत में इस कारण बहुत से धर्म और धर्म में भी भीतर तक जाति और उप-जाति और इससे भी आगे तक वर्गीकरण हुआ है,लेकिन

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 7, July- 2023
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

इसका औचित्य कहीं से भी तात्कालिक परिस्थितियों के लिए आवश्यक नहीं हैं।

जाति की परिभाषा

जाति की परिभाषा एक वंशानुगत और अन्तर्वैवाही समूह की तरह की जा सकती है। इसके परम्परागत सामान्य नाम, व्यवसाय एवं संस्कृति होती है। इसकी गतिशीलता अपेक्षित रूप से कट्टर होती है। इसकी प्रतिष्ठा स्पष्ट होती है और यह एक सजातीय समुदाय होता है। वर्तमान परिस्थितियों में जाति व्यवस्था एक औपचारिक संगठन की तरह है और जिसमें अधिक कठोरता नहीं है। अब यह व्यवस्था राजनीति से जुड़ गयी है । इस तरह उपरोक्त विवरणों के आधार पर हम जाति के निम्न लक्षणों का वर्णन कर सकते हैं:

(1) समाज का खण्डात्मक विभाजनः अतः भारतीय सामाजिक स्तरीकरण अधिकांश रूप में जाति पर निर्भर है। देश में कई जातियाँ विकसित हैं, जिनकी जीवन पद्धति जाति पर निर्भर है। जाति की सदस्यता जन्म पर आधारित है तथा जाति वंशानुगत है।

(2) सोपान व्यवस्थाः जातियाँ पवित्रता एवं अपवित्रता के आधार पर उच्च और निम्न धंधों पर बनी हैं। यह व्यवस्था एक सीढ़ी की तरह है, जिसमें सबसे ऊँची जाति को उच्च श्रेणी में रखा जाता है तथा अपवित्र धन्धा करने वाली जातियों को निम्न श्रेणी में रखा जाता है। उदाहरण के लिए, ब्राह्मण का कार्य कर्मकाण्ड और शिक्षण देना है। इस व्यवसाय को सबसे अधिक पवित्र माना जाता है। इसी कारण सोपानिक व्यवस्था में इसे उच्च स्थान प्राप्त है। दूसरी ओर सफाईकर्मी का काम झाड़ू लगाना है इसलिए इन जातियों को सोपान में अपवित्र धन्धों की श्रेणी में रखा जाता है।

(3) भोजन, खानपान और धूम्रपान पर प्रतिबन्धः सामान्यतया जातियाँ आपस में एक दूसरे का खानपान, एक ही पंगत में बैठना या मद्यपान या धूम्रपान करना स्वीकार नहीं करती। उदाहरण के लिए, ब्राह्मण दूसरी जातियों से भोजन नहीं लेते। वास्तव में खानपान का सारा मसला बहुत जटिल है। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में कई उप विभाजन है। कहा जाता है कि एक बारह कान्यकुब्ज और तेरह अंगीठियाँ अर्थात कान्य कुब्ज ब्राह्मण-ब्राह्मण तो है लेकिन वे कई उप श्रेणियों में बंटे हैं। खाने के दो प्रकार हैं: पक्का खाना यानी घी से पकाया हुआ खाना- इसमें पुड़ी, कचौड़ी और पुलाव है। दूसरा खाना कच्चा है, इसे केवल पानी द्वारा पकाया जाता है। इस खाने में चावल, दालें और शाक-सब्जी होते हैं। कुछ जातियों में केवल पक्का खाना ही खाने की अनुमति होती है। इस विभिन्नता के होते हुए भी ऊँची जातियों के लोग सामान्यतया नीची जातियों के हाथ का बना खाना स्वीकार नहीं करते। यही सिद्धान्त धूम्रपान पर भी लागू होता है ।

(4) अन्तर्विवाहः इसका अर्थ है कि एक जाति का सदस्य अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं करता । यह अन्तर्विवाह है। अन्तर्जातीय विवाह पर प्रतिबन्ध है । इस प्रतिबन्ध के होते हुए भी पढ़े-लिखे लोग और विशेषकर शहरी क्षेत्रों के लोग धीरे-धीरे अन्तर्जातीय विवाह करने लगे हैं।

(5) पवित्र और अपवित्रः पवित्र और अपवित्र की अवधारणाएँ जाति व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ हैं। इन अवधारणाओं का प्रयोग आदमी के कामकाज, व्यवसाय, भाषा, वेशभूषा और भोजन की आदतों से जाना जा सकता है। उदाहरण के लिए मद्यपान करना, शाकाहारी भोजन को ग्रहण करना, उच्च जातियों द्वारा छोड़े हुए भोजन को प्राप्त करना । ऐसे धन्धों में काम करना जो मरे हुए जानवरों को उठाता है, झाड़ू लगाना, गंदे कचरे को उठाना अपवित्र है । धन्धे के ये प्रतिबन्ध होते हुए भी आजकल ऊँची जातियाँ भी ऐसा काम करने लगी हैं। जूते के कारखाने में काम करना, ब्यूटी पार्लर में बाल काटने पर प्रतिबन्ध नहीं रहा ।

(6) व्यावसायिक संगठनः सामान्यतया प्रत्येक जाति के कुछ निश्चित धन्धे होते हैं और वे इन धन्धों को छोड़ नहीं सकते। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणों का काम पुरोहिती करना, पठन-पाठन करना, कायस्थ राजस्व के आंकड़ों को देखते हैं। बनिए व्यापार करते हैं। चमार मरे हुए जानवरों की खाल उधेड़ते हैं। आज औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के कारण कुछ लोगों ने अपने परम्परागत व्यवसायों को छोड़ दिया है। यह होते हुए भी ग्रामीण क्षेत्र में अब भी लोग परम्परागत व्यवसाय करते हैं। शहरों में भी कुछ नाई दिन में तो किसी दफ्तर में काम करते हैं परन्तु सुबह-शाम बाल काटने का धन्धा करते हैं।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 7, July- 2023
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

(7) नये सामाजिक क्षेत्र में सामाजिक-धार्मिक निर्योग्यताएँ एवं अधिकार: कुछ निम्न जातियों को आज भी मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया जाता। वे साहित्यिक भाषा का प्रयोग नहीं कर सकते, उन्हें सोने के आभूषण नहीं पहनने दिये जाते । वे छतरी लेकर बाजार में नहीं घूम सकते। ये सब व्यवहार के प्रतिमान आज बदल गये हैं।

(8) रीतिरिवाज, पहनावा और बोलचाल में अन्तर: हर एक जाति की अपने जीवन की एक निश्चित पद्धति होती है। इस जाति के रीतिरिवाज, पहनावा और बोलचाल होती है। उच्च जातियाँ साहित्यिक शब्दों का प्रयोग करती हैं। जबकि निम्न जातियाँ स्थानीय बोली बोलती हैं।

(9) संघर्ष का निदान करने के लिए कार्यपद्धतिः जब जातियों में संघर्ष होता है, तनाव होता है तो इसके लिए प्रत्येक जाति का एक परम्परागत तन्त्र होता है, जिनके माध्यम से तनाव में सुलह लायी जाती है। जातीय और अन्तर्जातीय झगड़ों को जाति पंचायत के माध्यम से हल किया जाता है।

भातीय इतिहास में जातिवाद का अध्ययनः

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की उत्पति वैदिक काल से ही मानी जाती है। वैदिक काल में समाज वर्णव्यवस्था पर आधारित था। सम्पूर्ण समाज चार वर्णों - ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शुद्र में विभाजित था । वैदिक काल में यह विभाजन अस्थायी था अथवा कार्यकुशलता पर आधारित था। कोई भी अपनी कार्यकुशलता के आधार पर अपना वर्ण बदल सकता था क्योंकि उस समय वर्ण विभाजन कर्म के अनुसार था न कि पैतृक था। ऋग्वेद के एक मंत्र से इस कथन को पुष्टि होती है। जिसमें लिखा है कि 'मैं कवि हूं मेरा पिता वैध है, और मेरी माता पत्थर पर अनाज पीसने वाली है।' इससे स्पष्ट होता है कि उस काल में वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित न होकर कर्म पर आधारित थी ।

वैदिक काल में सामजिक व्यवस्था बड़ी उच्च व्यवस्था थी लेकिन उतर वैदिक काल में सामाजिक कुरीतियों ने घर करना शुरू कर दिया। समाज अब भी चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शुद्र में विभाजित था। ब्राह्मणों की स्थिति समाज में सबसे उच्च थी, उन्ही के द्वारा यज्ञ और धार्मिक कर्मकाण्डों का कार्य किया जाता था । क्षत्रीय वर्ग को रक्षा और युद्ध सम्बन्धी कार्य दिए गये थे। वैश्य व्यापर और कृषि सम्बधी कार्य करते थे। शुद्र का कार्य इन तीनो वर्णों की सेवा करना था । उतर वैदिक काल तक समाज में कई कुरीतिया आ गयी थी इसलिए अब वर्ण व्यवस्था जटिल हो गयी थी । अब कार्यकुशलता का स्थान वंशानुगत हो गया था। ऋग्वेद के दसवें मण्डल 'पुरुष सूक्त' में प्रथम बार यह उल्लेख किया गया कि ईश्वर ने आदि-पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से राजन्य (क्षत्रीय), जाँघों से विश् (वैश्य) और चरणों से शूद्र को जन्म दिया। इससे स्पष्ट है कि वर्ण अथवा जाति व्यवस्था का स्वरूप ऋग्वेद के निर्माण के अन्तिम समय में बनना आरम्भ हुआ था। आरम्भ में समाज के दो भाग थे-द्विज (आर्य) और अद्विज (अनार्य)। परन्तु धीरे-धीरे वर्ण व्यवस्था आरम्भ हुई। ब्राह्मणों और राजन्यों ने इसमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया। जनसाधारण आर्य जो कृषि, पशुपालन अथवा अन्य व्यवसायों में लगे हुए थे, 'विश्' कहलाने लगे और अनार्यों को शूद्रों की श्रेणी में रखा गया। परन्तु इस काल में वर्ण व्यवस्था कठोर न थी । व्यवसायों के आधार पर आर्यों में वर्ण परिवर्तन सम्भव था। विवाह सम्बन्धों और खान-पान में आर्यों में कोई बन्धन

न था। केवल दस्यु, दास अथवा शूद्रों से, जो आर्य न थे, अन्तर किया जाता था। ऋग्वेद में दान के लिए पुरुष-दान का उल्लेख बहुत कम मिलता है, जबकि नारी दास-दान में स्वीकार की जाती थी, इसके विवरण बहुत हैं। इससे यह अनुमान होता है कि धनी वर्ग में घरेलू दास प्रथा ऐश्वर्य के प्रतीक के रूप में विद्यमान थी। परन्तु आर्थिक उत्पादन में दास प्रथा उस समय प्रचलित न थी अर्थात् कृषि उत्पान या किसी भी अन्य वस्तु के उत्पादन के लिए मनुष्यों को दासों के रूप में नहीं रखा जाता था। 2

उतर वैदिक समाज में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का स्थान श्रेष्ठ हो गया। ब्राह्मणों ने अपनी श्रेष्ठता का दावा किया परन्तु क्षत्रीय इसमें उसके प्रतिद्वन्द्वी बने रहे। बाद में इन दो वर्णों में व्यावहारिक समझौता हो गया। ब्राह्मण और क्षत्रीय, दोनों ही समाज के ऐसे वर्ग थे जो उत्पादन में कोई भाग नहीं लेते थे, परन्तु उत्पादन से अधिक लाभ स्वयं प्राप्त करना चाहते थे। दोनों की प्रतिद्वन्द्विता का मूल कारण भी सम्भवतया यही आर्थिक कारण था। बाद में व्यावहारिकता के कारण दोनों वर्गों ने पारस्परिक समझौता कर लिया जिसके द्वारा ब्राह्मणों को सम्मान की दृष्टि से श्रेष्ठ स्थान प्रदान

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 7, July- 2023
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

किया गया और क्षत्रियों ने धीरे धीरे भूमि पर स्वामित्व के अधिकार को प्राप्त कर लिया। इसी कारण, यद्यपि इस काल में राजा को भूमि का स्वामी स्वीकार नहीं किया गया तब भी उसे किसी व्यक्ति को भूमि से पृथक करने का अधिकार प्राप्त हो गया। वैश्यों का स्तर उन दोनों की अपेक्षा कुछ निम्न समझा गया और शुद्रों की स्थिति गिरने लगी। साधारणतया श्रेष्ठ जाति वाले पुरुष निम्न जातियों की कन्याओं से विवाह कर सकते थे, परन्तु निम्न जाति वाले पुरुष अपनी जाति से श्रेष्ठ जाति की कन्या से विवाह नहीं कर सकते थे। परन्तु तब भी अन्तर्जातीय विवाह होते थे। केवल शूद्रों से विवाह सम्बन्ध करना अच्छा नहीं समझा जाता था। इस प्रकार उत्तर वैदिक काल में स्पष्टतया चार वर्णों अथवा जातियों में विभाजित हो गया। परन्तु अभी यह जाति व्यवस्था कठोर न थी । अन्तर्जातीय विवाह और खानपान पर कोई बाधा न थी और एक व्यक्ति की जाति उसके कार्यों से निश्चित होती थी। केवल शूद्र इसमें एक अपवाद बनते जा रहे थे। वर्ण-व्यवस्था की यह स्थिति उपनिषद-काल तक रही। धर्म-सूत्रों, महागाथा - काल और उसके पश्चात् स्मृति-काल तक धीरे-धीरे यह कठोर और गतिहीन होती गयी, यहाँ तक कि स्मृति-काल में हमें अस्पृश्य जाति के भी प्रमाण प्राप्त हो जाते हैं ।

वैदिकोत्तर काल के बाद का समाज भी स्पष्टत: चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रा में विभाजित था। हर वर्ण के कर्त्तव्य अलग-अलग निर्धारित थे, और इस पर जोर दिया जाता था कि वर्ण जन्ममूलक है और दो उच्च वर्णों को कुछ विशेषाधिकार दिए गए। ब्राह्मण, जिन्हें पुरोहितों और शिक्षकों का कर्तव्य सौंपा गया था, समाज में अपना स्थान सबसे ऊँचा होने का दावा करते थे। वे कई विशेषाधिकारों के दावेदार थे, जैसे दान लेना, करों से छुटकारा, दंडों की माफी आदि। उत्तर वैदिक ग्रंथों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ ब्राह्मणों ने ऐसे अधिकारों का लाभ उठाया। वर्णक्रम में क्षत्रियों का स्थान दूसरा था। वे युद्ध करते थे, शासन करते थे और किसानों से उगाहे गए करों पर जीते थे। वैश्य खेती, पशुपालन और व्यापार करते थे और ये ही मुख्य करदाता थे, यद्यपि इन्हें दो उच्च वर्णों के साथ द्विज नामक समूह में स्थान मिला था। द्विज को जनेऊ पहनने और वेद पढ़ने का अधिकार था, पर शूद्र को इससे वंचित रखा गया था । शूद्रों का कर्त्तव्य ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करना था, और स्त्रियों की भाँति उन्हें भी वेद पढ़ने के लिए अधिकार से अलग रखा गया था। वैदिकोत्तर काल में वे गृहदास, कृषिदास, शिल्पी और मज़दूर के रूप में दिखाई देते हैं। स्वभाव से ही क्रूरकर्मा, लोभी और चोर कहे गए हैं, और उनमें से कुछ अस्पृश्य भी माने जाते थे।

वर्णव्यवस्था में जो जितने उँचे वर्ण का होता था वह उतना ही शुद्ध और सुविधाधिकारी समझा जाता था। अपराधी जितने ही नीच वर्ण का होता उसके लिए सजा उतनी ही अधिक कठोर होती थी । यह स्वाभाविक ही था कि इस तरह के वर्ण विभाजन वाले समाज में तनाव पैदा होता और वैश्यों और शूद्रों में इसकी कैसी प्रतिक्रिया थी यह जानने का कोई साधन नहीं है। परंतु क्षत्रिय लोग, जो शासक के रूप में काम करते थे, ब्राह्मणों के धर्म विषयक प्रभुत्व पर प्रबल आपत्ति करते थे, और लगता है कि उन्होंने वर्णव्यवस्था को जन्ममूलक मानने के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया था। विविध विशेषाधिकारों का दावा करने वाले पुरोहितों या ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के विरुद्ध क्षत्रियों का खड़ा होना नए धर्मों के उद्भव का अन्यतम कारण हुआ। जैन धर्म के संस्थापक वर्धमान महावीर और बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध दोनों क्षत्रिय थे और दोनों ने ब्राह्मणों की मान्यता को चुनौती दी। जैन एवं बौद्ध धर्म वैदिक कर्मकांड तथा ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था के विरोध में उत्पन्न हुए थे। इस दृष्टि से निश्चय ही दोनों पंथों का सम्बन्ध सामाजिक आर्थिक पद्धति से था। दूसरे शब्दों में दोनों पंथों ने अपने युग की महत्वपूर्ण समस्याओं की पहचान करके उनके विरुद्ध चुनौती उत्पन्न की। सर्वप्रथम दोनों पंथों ने यह प्रमाणित किया कि वर्ण पद्धति एवं जाति पद्धति ईश्वरीय नहीं बल्कि मानव निर्मित है। उन्होंने मानवीय आधार पर इसका खंडन किया तथा दोनों पंथों ने जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था के स्वरूप में चुनौती दी। यद्यपि दोनों ने निचले वर्ण के अस्तित्व को स्वीकार किया तथापि उनकी वर्तमान स्थिति को कर्म के साथ जोड़कर देखा। सबसे बढ़कर उन्होंने निम्न वर्णों एवं अछूतों के लिए भी निर्माण या कैवल्य का विधान किया। जैन धर्म की तुलना में बौद्ध धर्म की दृष्टि अधिक मूल परिवर्तनवादी थी क्योंकि उसने परमात्मा की सत्ता को अस्वीकार करके वैदिक धर्म की जड़ पर ही प्रहार किया। इस दृष्टि से वर्ण-व्यवस्था के प्रति बौद्ध धर्म का दृष्टिकोण असमझौतावादी प्रतीत होता है। यही कारण है कि यह वर्तमान में भी अपनी विशिष्टता बनाए हुए है तथा 1956 में

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 7, July- 2023
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

भीमराव अम्बेडकर को भी इस बात के लिए प्रेरित किया गया कि ये बौद्ध सामाजिक व्यवस्था में दलितवर्ग हेतु विकल्प ढूंढ़ने का प्रयास करे। इस दृष्टि से बुद्ध विश्व के कुछ महानतम सामाजिक चिंतकों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। सामाजिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पक्ष था कुछ लोगों की आर्थिक स्थिति में व्यापक गिरावट आना। बौद्ध चिंतन को इसके प्रति संवेदनशील होने का ही यह परिणाम है कि सर्वप्रथम बौद्ध साहित्य में ही दलित (दरिद्र) शब्द का प्रयोग दिखता है जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनों ने इस सामाजिक आर्थिक विभाजन का विकल्प जैन अथवा बौद्ध संघों के रूप में प्रस्तुत करना चाहा, क्योंकि वहाँ व्यक्ति के बीच पूर्ण समानता थी। इस प्रकार यह समाज के समक्ष एक आदर्श प्रतिरूप था। जोकि तुलसी एवं गांधी के रामराज्य की परिकल्पना में भी दिखता है।

मध्यकाल में भारतीय समाज में जातिवाद, अस्पृश्यता अपनी चरम सीमा पर पहुच चुकी थी। इस काल में ब्राह्मण वर्ग का प्रभुत्व था । निम्न वर्ग के लोगो की स्थिति बहुत दयनीय थी। समाज में उन्हें किसी भी प्रकार का अधिकार प्राप्त नही था । उच्च वर्ग के लोगो के द्वारा निम्न वर्ग का शोषण हो रहा था । उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग को घृणा की दृष्टि से देखते थे। मध्यकाल में निम्न वर्ग के लोगो को सार्जनिक कुओं, तलवों से पानी भरने का अधिकार नही था । उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के मात्र स्पर्श से ही खुद को अपवित्र मानते थे इसलिए उनके बीच कोई भी सामाजिक सम्बन्ध नही थे। उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग से किसी भी प्रकार के शादी विवाह जैसे सम्बन्ध नही रखते थे। अगर कोई दलित मात्र वेद मंत्र भी सुन लेता था तो उसके कान में लोहा पिघलाकर दाल दिया जाता था। धीरे-धीरे समाज में समाजसेवको का आगाज हुआ जिन्होंने की भारतीय समाज की बिगड़ी हुयी व्यवस्था को ठीक करने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। इन समाज सुधारको में संत रविदास, कबीरदास, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि प्रमुख थे।

18वीं शताब्दी में भारतीय समाज और धर्म अवनति के कगार पर था। 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही मुगल साम्राज्य का तेजी से पतन शुरू हो गया । राजनीतिक अराजकता की स्थिति व्याप्त हो गई। सर्वत्र सत्ता-संघर्ष के छोटे-मोटे दौरों की श्रृंखला सी बन गई और भारतीय समाज असुरक्षा एवं अस्थिरता के भंवर में फंस गया। सामाजिक कठोरता एवं असंगत सामाजिक प्रथाएं 18वीं सदी के भारत की विशेषताएं बन गई। ग्रामीण समाज छोटे दायरे में सिमटता हुआ नगरीय समाज से लगभग कट सा गया, धार्मिक जीवन के अत्यधिक रूढ़िग्रस्त हो जाने से स्थिति और विषम हो गई- कुल मिलाकर 18वीं सदी भारत के लिए एक अंधकारमय युग बन गई। इस समय पंडित वर्ग किसी भी सामाजिक बुराई को शास्त्रोचित बता कर इसे धार्मिक कार्य का रूप दे सकते थे। कुल मिला कर 18वीं सदी असहिष्णुता और असंगत प्रथाओं का दौर थी । वैदिक काल में कर्म के आधार पर निर्मित वर्ण-व्यवस्था कालान्तर में अत्यधिक जटिल एवं कठोर होती गई। वर्ण-व्यवस्था हिन्दू धर्म की एक विशेषता रही है जिसमें विभिन्न वर्णों का श्रेणी-क्रम निश्चित है। यह श्रेणी-क्रम सामाजिक संरचना का आधार था। निम्न वर्गों की उच्च श्रेणी में गतिशीलता वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि से निषिद्ध थी। मोटे रूप से, संदर्भित सदी में धार्मिक आडम्बर और
प्रतिबन्ध कठोर हो गये थे।

जातिवाद के दुष्परिणामः

नोट:

जत्तिवाद की उत्पति से सम्पूर्ण समाज विखंडित हो गया और समाज में एकता का आभाव हो गया।

जातिवाद की उत्पति से मानवता का ह्रास हुआ और वैमनस्य को बढावा मिला।

जातिवाद से इस्त्रियो की स्थिति में भी गिरावट आयी और स्त्रियों का काफी शोषण हुआ। वर्तमान में स्त्रियों को संविधान अधिकार दिए गये है लेकिन आन्तरिक रूप से अभी भी उनसे भेद - भाव देखने को मिलता है ।

जातिवाद से समाज में शैक्षणिक, आर्थिक, नैतिक रूप भेद-भाव बढाता रहा है।

भारतीय समाज में जातिवाद के विखंडन के कारण देश की सुरक्षा का अतिभार समाज के एक ही हिस्से पर रहा है जिसके कारण मुगलों, तुर्कों, अंग्रेजो ने हमारे देश को गुलाम बनाया है।

निष्कर्ष:

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 7, July- 2023
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

भारतीय समाजिक व्यवस्था का इतिहास एक उच्च कोटि की व्यवस्था के साथ शुरू होता है। जिसमे की किसी भी प्रकार का भेद-भाव स्वीकार नही किया गया। लेकिन धीरे - धीरे समाज में बुराइयाँ घर करती गयी और समाज विखंडित हो गया। जातिवाद की उत्पति से समाज में मानवता का ह्रास हुआ। उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच शत्रुता बढने लगी और निम्न वर्ग शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक अधिकारों से वंचित हो गया। वर्तमान में निम्न वर्ग के लोगो को संविधानिक अधिकारों के मिलने से उनकी स्थिति में सुधार अवश्य हुआ है लेकिन अभी भी आन्तरिक तौर उनके साथ भेद-भाव होता रहता है। भारतीय समाज के पिछड़े इलाको में शिक्षा के आभाव के कारण यह भेद भाव काफी देखने को मिलता है। इसके लिए आवश्यक है की इन इलाको में सविधानिक अधिकारों के बारे में जानकारी दी जाये पर शिक्षा के स्तर को भी बढावा दिया जाये।

संदर्भ सूचि:

मिश्रा, डॉ महेंन्द्र कुमार. (2014). भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति. कल्पना प्रकाशन. जहाँगीर पुरी दिल्ली.

खन्ना, डॉ कैलाश. (2016). प्राचीन भारत का इतिहास. अर्जुन पब्लिशिंग हाउस. प्रहलाद गली. अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली.

पाठक, रश्मि (2017). प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास अर्जुन पब्लिशिंग हाउस. गोविन्द लेन अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली.

तिवारी, डॉ मुकेश कुमार. (2019). प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत. क्रिसन्ट पब्लिशिंग कारपोरेशन. माथुरा लेन. अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली.

बाला, सरोज. (2018). आधुनिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास. ओमेगा पब्लिकेशन्स. जे. एम्. डी. हाउस गली मुरारी लाल. अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली.

परूथी, डॉ. आर. के. (2016). आधुनिक भारत. अर्जुन पब्लिशिंग हाउस. प्रहलाद गली. अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली.